विद्यापति-नीति-तरंगिणी

अनुवादक

श्रीचन्द्रनाथमिश्र, 'अमर'

प्रकाशक

नवरत्न गोष्ठी

मिश्रटोला, दरभंगा।

विद्यापतिनीति तरङ्गिणी

[नवरत्न ग्रन्थमालाक २८म पुष्प]

सम्पादक ओ अनुवादक

श्रीचन्द्रनाथ मिश्र 'अमर

नवरत्न गोष्ठी
दरभंगा

Scanned by CamScanner

वसन्त पंचमी १९७३

प्रथम संस्करण ५,०००

मूल्य :—तीस पाइ मात्र

मुद्रक :—नव भारत प्रेस, लहेरियासराय

प्राक्कथन

ई निर्विवाद जे महाकवि विद्यापति ठाकुर अपन मैथिली मे रचित कोमलकान्तपदावलीक प्रसादेँ पूज्य बनलाह, मैथिलीक प्राण वा, आधारशिला जे कही, से कहल जाइत छथि, किन्तु एहि मैथिलीक सूत्रकेँ पकड़ि जे हिनक अध्ययन अनुसन्धान आरम्भ भेल ताहिसँ हिनक व्यक्तित्वक विराट्ता प्रकट होइत गेल अछि आ भऽ रहल अछि।

महाकवि मात्र महाकविए नहि, अपितु महामहोपाध्याय सेहो छलाह, तकर प्रमाण थिक 'हुनक पुरुषपरीक्षा' जाहिमे कथाप्रसङ्गेँ कतोक नीति वाक्य, आप्त वाक्य, गुम्फित कयल गेल अछि जे पुरुषकेँ यथार्थ पुरुष बनबाक प्रेरणा दैत अछि।

जहिना हितोपदेशक उपादेयताक प्रसंग कहल गेल अछि—

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु।
वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीति विद्यां ददाति च॥

तहिना पुरुषपरीक्षाक प्रसंग महाकवि स्वयं लिखैत छथि—

शिशूनां सिद्ध्यर्थं नय—परिचितेनूतनधियां
मुदे पौरस्त्रीणां मनसिज-कला-कौतुक-जुषाम्।

निदेशान्निः शङ्कं सपदि शिव सिंहस्य नृपतेः
कथानां प्रस्तावं विरचयति विद्यापति कविः ॥

एहि पुरुषपरीक्षाक कथा सभमे बहुतो कथा लोक-कथाक रूप ग्रहण कऽ जनजनमे प्रचलित अछि, किन्तु एहि कथा सभक क्रममे लिखित नीति पूर्ण आप्त वाक्य सभक दिस जन साधारणक ध्यान एखन धरि नहि जा सकल अछि। पुरुषपरीक्षाक सुलभ संस्करण उपलब्धो नहि छल। एमहर आबि स्वनामधन्य आचार्य प्रवर श्रीयुत् सुरेन्द्र झा 'सुमन' जी एहि ग्रन्थक सम्पादन कऽ महान उपकार कयलनि अछि।

गत वर्ष अर्थात् १९७२ ई० क १९ नवंबरक दिन कातिक धवल त्रयोदशीक पुण्यतिथिक अवसर पर दरभंगा जिलाक शिक्षा-पदाधिकारी श्रीमान नन्दजी सिंहक संग विद्यापतिक जन्मभूमि बिसफी मे महाकविक स्मृति-पर्व मनयबाक हेतु जयबाक संयोग लागल। श्रीयुत सिंह जी, जनिक प्रेरणा सँ किशोरमति बालक बालिकाक हेतु १९७० ई० क विद्यापति पर्वक अवसर पर मात्र ४१ गोट पदक संकलन कऽ 'विद्यापति सूक्ति तरंगिणीक' संकलन ओ सम्पादन करबाक सुयोग लागल छल, वार्त्ता प्रसंगें कहलनि 'मेरी तो इच्छा है कि मिथिला के हर बच्चे के हाथमे विद्यापति साहित्यका कुछ न कुछ अंश अवश्य होना चाहिए।' एही प्रसंगमे पुरुष परीक्षाक

चर्चा कयलिऐनि आ ओ यथाशीघ्र एहि प्रकारक संकलन करबाक आग्रह कयलनि। ओहि आग्रहमे एक तरहेँ आ-आदेशात्मक ध्वनि प्रतिभासित भेल।

पुनश्च समयक अल्पता सम्मुख ठाढ़ छल, तथापि मात्र ६४ गोट एहन श्लोक एहिमे संकलित भऽ सकल जकर अध्ययन मनन कयलासँ नेना लोकनि जीवन-यात्राक पथमे आलोक पाबि सकैत छथि। यथासाध्य गद्यमे सरलार्थक संग पद्यात्मक अनुवादक चेष्टा कयल गेल। केहन भेल तकर निर्णायक सुधी समाज होयताह।

हम अन्त मे प्रेरणा स्रोत श्रीमान् नन्दजी सिंहक प्रति श्रद्धावनत छी जे एहि दिश प्रवृत्त कयलनि।

त्वदीय वस्तु गोविन्द !
अतः
तुभ्यमेव समर्पितम्

एही शब्दें महाकविएक कर-कमलमे सादर समर्पित

समर्पक—

वसन्त पंचमी—१९७३

श्री 'अमर'

अक्षरानुक्रमसँ श्लोक सूची

विद्यापतिनीति तरङ्गिणी

विद्यापति-नीति-तरंगिणी

[१]

वीरः सुधीः सविद्यश्चपुरुषः पुरुषार्थवान् ।
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः ॥

वीर, बुधियार, विद्वान तथा पुरुषार्थी जे छथि से पुरुष थिकाह, एहिसँ अतिरिक्त पुरुष केँ पुरुषक आकार मात्र रखनिहार विनु नाङड़िक पशुए बुझबाक चाही ।

वीर, सुधी, विद्यासँ शोभित पुरुषार्थी
थिक पुरुष प्रमाण ।
विनु नाङड़िक पुरुष आकारक
पशुए थिक चारू सँ आन ॥

[२]

नैकाकी निर्णयंकुर्यादिष्टे कृत्यविधौ क्वचित् ।
सम्भवन्ति बुधस्यापि दोषा वै विभ्रमादयः ॥

इच्छानुकूल फल प्राप्त करबाक कामनासँ जे काज करी ताहिमे एकसर निर्णय नहि कऽ लेबाक चाही, कारण जे भ्रम सँ विद्वानो लोकनि सँ दोष भऽ जाइत छैन्हि ।

इच्छित कोनो काज हेतु नहि
निर्णय एकसर थिक करबाक ।

सम्भव रहइछ विद्वानो सँ
भ्रमवश कतहु दोष होयबाक ॥

[३]

दानवीरो हरिश्चन्द्रः दयावीरः शिविर्नृपः ।
युद्धवीरो भवेत्पार्थः सत्यवीरो युधिष्ठिरः ॥

राजा हरिश्चन्द्र दानमे, राजा शिवि दया मे, पार्थ अर्थात् अर्जुन युद्ध मे तथा महाराज युधिष्ठिर सत्य मे वीर भऽ गेल छथि ।

हरिश्चन्द्रनृप दानवीर ओ दयावीर शिविनृपति प्रमाण ।
सत्यवीरमे रहथि युधिष्ठिर, युद्धवीरमे पार्थ महान ॥

[४]

भौतिकेन शरीरेण नश्वरेण चिरस्थिरम् ।
लप्स्यमानं यशः को वा परिहर्त्तुं समीहते ॥

पाँच तत्त्वसँ बनल एहि नाशवान् शरीर सँ यदि सर्बदिन रहयवाला यश प्राप्त होइत होइक तँ तकरा के छोड़ऽ चाहत ?

नाशवान भौतिक शरीरसँ स्थायी सुयश होइत हो प्राप्त ।
किन्नहुँ नहि से छोड़क चाही, के नहि कहत वचन ई आप्त ॥

[५]

यत्करिष्ये स्वयं कर्म भोक्ष्ये तस्य स्वयं फलम् ।
स्वापराध-विपन्नानां विपत्तिः केन शोच्यते ॥

अपने जे नीक अधलाहकर्म करब तकर फलो अपनहि भोगऽ पड़त। अपन बेसाहल विपत्तिक हेतु सोच दोसर के करत ?

अपने करय जेहन जे करनो
तेहने करय तकर फल भोग
अपन कयल अपराध कुफल केर
चिन्तो होइछ अपने जोग ॥

[६]

विवेकेन विना चौरो विना शौर्येण कातरः ।
अलसस्तु विनोत्साहं लोके मर्त्योऽभिजायते ॥

संसारमे विवेकक बिनु चोर, वीरताक बिनु कायर तथा बिनु उत्साहक लोक आलसी होइत अछि।

शूरताक बिनु कायर होइछ, विना विवेकक चोर।
बिनु उत्साहक लोक आलसी धरइछ दुखक पछोड़ ॥

[७]

दुर्बलस्य गुरुर्भारो दुष्टाग्नेगुरु भोजनम् ।
राज्यं गुरुच दुर्बुद्धेः परिणामसुखं कुतः ॥

कमजोर कें भारीमोटा भार भऽ जाइत छैक, जकरा पचैत नहि छैक तेहन लोक कें भोजन भारी भऽ जाइत छैक तथा

जकर बुद्धि बिगड़ल छैक तेहन लोक कें राज्यक भार भारी भऽ जाइत छैक। एहि सभ सँ सुखद परिणामक आशा कहाँ सँ कयल जा सकैत अछि ?

होइत छै बलहीन लोक कें मोटा भारी,
अपच रहै जकरा, तकरा तरुआ तरकारी।
बुद्धिहीन कें राज्यभार होइछ अपकारक
भेटय पुनि परिणाम कतय सँ सुख संसारक ?

[८]

हीन संवर्धनासक्तो हीयते हि महानपि।
मृगमङ्के समारोप्य लेभे चन्द्रः कलङ्किताम् ॥

हीनकें पीठ ठोकि कऽ आगाँ बढ़ौनिहार पैघो लोक अपने हीन भऽ जाइत अछि जेना चन्द्रमा हरिण कें कोरामे राखि कऽ स्वयं कलङ्की बनलाह।

दैछ नीच कें जे प्रोत्साहन अपनहुँ होइछ नीच।
कहबथि चन्द्र कलङ्की रखने मृग कें कोरक बीच ॥

[९]

शत्रवः पिशुनाः रोगाः स्वभावादपकारिणः।
अप्रतिक्रियमाणास्तु प्रभवन्ति पदे पदे ॥

शत्रु, चुगिला आ रोग स्वभावतः अपकार कयनिहार होइत

अछि। यदि एकरा सभसँ बँचबाक उपाय नहि कयल जाय तँ डेगडेग पर ई सब बढ़ले जाइत अछि।

होइछ स्वभावे सँ अपकारक बैरी, चुगिला, रोग।
दिनदिन बढ़ले जाइछ कयने बिनु नाशक उद्योग॥

[१०]

स्वेन दोषेण दुष्टात्मा स्वयं नश्यति केवलम्।
भूपालस्य तु दोषेण नश्यन्ति सकलाः प्रजाः॥

अपन कयल दोष सँ दुष्ट लोक केवल अपने नष्ट होइत अछि, किन्तु राजाक दोष सँ समस्त प्रजाक नाश होइत छैक।

अपन कयल दुष्कर्में दुर्जन अपने मात्र नशाय।
किन्तु कयल राजाक पाप सँ प्रजो निखत्तर जाय॥

[११]

भेतव्यं नापदस्तस्याः क्षणो यामन्तरा भवेत्।
को जानाति क्षणादूर्ध्वं विधाता किं विधास्यति॥

जाहि विपत्तिकेँ अयबा मे किछुओ क्षणक विलम्ब होइक ताहि विपत्तिसँ डेरयबाक नहि चाही, कारण जे एक क्षणक बाद विधाता की करताह से क्यो नहि जनैत अछि।

हो विलम्ब जकरा अयबामे ताहि विपत्तिक नहि परवाह
करी, विधाता के जनैत अछि क्षणक बाद पुनि की करताह?

[१२]

दीयते न यदुत्साहात् भुज्यते यन्न कामतः ।
तद्धनं भुवि दुःखार्थं खेदार्थं वा विचिन्वतः ॥

जे धन ने उत्साह सँ दान कयल जा सकय अथवा ने सौख सँ भोगल जाय ओ धन संसार मे दुःख देबाक हेतु अथवा खेद उत्पन्न करबाक हेतु होइत अछि ।

जे उत्साहेँ देल जाय नहि,
नहि प्रसन्न भऽ भोगल जाय ।
से धन दुख वा खेद हेतु
होइत अछि जानक हेतु बलाय ॥

[१३]

आत्मघातं गृहत्यागं धनहानिं सुहृद् वधम् ।
ज्ञान-लोपकरः पुंसां कोपः कारयते न किम् ॥

अपन आत्म हत्या, घरक परित्याग, मित्रक वध आ ज्ञानक हरण कयनिहार क्रोध मनुष्यसँ की की नहि करा लैत छैक ? अर्थात् क्रोधमे लोक सभ किछु कऽ बैसैत अछि ।

मित्रक वध, धनहानि करावय
आत्मघात पुनि घरहुक त्याग ।

की की ने करबैछ पुरुष सँ
क्रोध, खसाबय माथक पाग ॥

[१४]

सकृदुक्तं च गृह्णाति न च विस्मरति श्रुतम् ।
धीर्धारणावती यस्य मेधावी स इहोच्यते ॥

जे एक बेर मात्र कहला उत्तर सीखि लैत अछि आ सुनल कथा कहियो नहि बिसरैत अछि, जकर बुद्धि धारण करबामे तेजगर होइत छैक ताहि व्यक्तिकें मेधावी कहल जाइत छैक ।

एक बेर कहने जे सीखय, बिसरय नहि सुनलाहा बात ।
जकर बुद्धि धारणमे सक्षम से थिक मेधावी विख्यात ॥

[१५]

नष्टे कोषे, हते सैन्ये, भृत्येच विकृतिं गते ।
कुलीनेन कृता मैत्री पुंसां कल्पलतायते ॥

खजाना लुटि गेला पर, सैनिक सभकें मारल गेला उत्तर तथा नौकर चाकरक विरुद्ध भऽ गेलो पर कुलीनक संग कयल मित्रता लोककें कल्पलताक समान रक्षा करैत छैक ।

लुटय खजाना, मरय सैन्य सभ
नोकर चाकर होय विपक्ष ।
कयल कुलीनक संग मित्रता
होइछ कल्पलता प्रत्यक्ष ॥

[१६]

लब्ध्वाऽपि मानुषं जन्म पुण्यं येन न सञ्चितम् ।
नार्जितञ्च यशः शुद्धं स मूर्ख इति कथ्यते ॥

मनुष्यक कोखिमे जन्म लैयोकऽ जे ने धर्म एकठ्ठा कऽ सकल ने शुद्ध यश कमा सकल सैह व्यक्ति मूर्ख कहबैत अछि ।

पाबि मनुष्यक देह करय नहि पुण्यक संचय ।
अर्जन करय न सुयश, मूर्ख से कहबय निश्चय ॥

[१७]

पिशाचाः पिशुनाः श्वानो लोभान्धाः सुतरां त्रयः ।
किञ्चित् दत्वा निवार्यन्ते कालयापन-काम्यया ॥

पिशाच, चुगिला आ कुकुर ई तीनू स्वभावेसँ लोभी होइत अछि । तेँ काल कटबाक हेतु एकरा सभकेँ किछु दऽ कऽ मुँह बन्द कऽ देबाक चाही ।

चुगिला, कुकुर, पिशाच होइत अछि लोभें आन्हर ।
टुकड़ी फेंकि, निवारि सुतारय काज चतुर नर ॥

[१८]

सेना बलं नरेन्द्राणां कुवृत्तिः कुधियां बलम् ।
दैन्यं बलं दरिद्राणां बलं साधोर्यथार्थता ॥

राजाक बल सेना होइत छैन्हि आ अधलाह बुद्धि वलाक

अधलाह काजे बल होइत छैक एवं दरिद्रक बल दीनता प्रकट करब आ सज्जनक बल यथार्थता अर्थात् सत्य होइत छैन्हि।

राजाकेर थिकनि बल सेना
विगड़ल बुद्धिक शक्ति कुवृत्ति।
दैन्य दरिद्रक बल कहबय
आ साधुक थिकनि यथार्थ प्रवृत्ति॥

[१९]

सख्यं हि मनसोरैक्यं देहमात्र विभिन्नयोः।
यः सख्युः सुख दुःखाभ्यां नाप्यते स कुतः सखा॥

असली मित्रता ओ थिक जे मनसँ एक होथि, केवल शरीरसँ दू रहथि, सुख एवं दुःख सभ अवस्थामे अपना मित्रक हेतु जे अपनाकेँ अर्पित नहि कऽ देथि से मित्र कोना भेलाह?

रहितहु देहेँ भिन्न हृदयसँ एक होइत छथि मित्र पवित्र।
सुखदुखमे नहि संग देथि तँ थिका तेहन सन्दिग्धे मित्र॥

[२०]

श्रवणहृदयवन्तं प्राणिनं जीवलोके
पशुमपि परितुष्टं गीतविद्यः करोति।
पशुजनपरितोषे यस्य विद्या समर्था
प्रभवति परितोषं तद्विदां किं न तस्मात्॥

कान तथा हृदय रखनिहार प्रत्येक प्राणीकेँ अर्थात् पशु पर्यन्तकेँ अपना गीतसँ गीतविद्य प्रसन्न कऽ लैत छथि। तेँ जे पशु पर्यन्तकेँ अपना विद्यासँ सन्तुष्ट करबाक योग्यता रखैत छथि तनिका सँ गीत विद्याक मर्मज्ञ किएक नहि सन्तुष्ट होयताह।

कान, हृदय रखने जे प्राणी अछि संसारक,
गीतविद्य सन्तुष्ट करथि निज विद्याबलसँ।
पशुओकेँ सन्तुष्ट करयमे छथि समर्थ जे
आदृत होथि किएक नहि से विद्वन्मण्डलसँ॥

[२१]

पिता ददाति सर्वस्वं पुत्रेभ्यः परितोषवान्।
न तु भाग्यंच बुद्धिं च दातुं तेनापि शक्यते॥

पालन-पोषण कयनिहार पिता अपना पुत्रकेँ अपन सर्वस्व दऽ दैत छथिन्ह, किन्तु भाग्य आ बुद्धि देबामे ओहो समर्थ नहि होइत छथि।

पुत्र हेतु सर्वस्व पिता उत्सर्ग करै' छथि।
भाग्य, बुद्धि देबामे धरि असमर्थ रहै' छथि॥

[२२]

हीयते हीनसंसर्गात् बुद्धिमानपि मानवः।
गवां संसर्गदोषेण गोपो भवति बालिशः॥

छोटक संगति कयला सौं बुद्धिमान लोक पर्यन्त छोट भऽ जाइत छथि जेना गायक संसर्गमे रहनिहार गायक चरवाह मूर्ख होइत अछि ।

हीनजनक संसर्ग बिसाइछ बुधियारोक कपार ।
तेँ तँ गायक संगे रहने कहबय गोप गमार ॥

[२३]

उत्तमं हि धनं विद्या दीयमानं न हीयते ।
राजदायादचौराद्यैः ग्रहीतुं नापि शक्यते ॥

सभसौं उत्तम धन विद्या थिक, कारण जे देला उत्तर ई धन घटैत नहि अछि आ ने राजा ने देयाद अथवा चोरे धन लऽ सकैत अछि ।

धनमे उत्तम धन थिक विद्या देनहु जे न घटैछ ।
राजा, चोर, देयाद केयो नहिं छिनि, हरि, बाँटि सकैछ॥

[२४]

पुरुषं साहसक्लेशात् अर्जनायासकारिणम् ।
लक्ष्मीर्विमुञ्चति क्वापि विद्याऽभ्यस्ता न मुञ्चति ॥

साहस तथा कष्ट सौं कमा कऽ एकट्ठा कयनिहार पुरुष कें लक्ष्मी कतहु, कखनहुँ त्यागि दैत छथिन्ह, मुदा अभ्यास कयल विद्या लोककें कखनहुँ परित्याग नहि करैत छैक ।

साहस कय, सहि क्लेश, करय धन अर्जन जे सायास ।
लक्ष्मी त्यागथि, तजय न विद्या किन्तु मेल अभ्यास ॥

[२५]

किं तस्य मानुषत्वेन बुद्धिर्यस्य न निर्मला ।
बुद्ध्याऽपि किं फलं तस्य येन विद्या न सञ्चिता ॥

ओहि व्यक्तिकेँ मनुष्य भऽ कऽ जन्म लेला उत्तर कोन फल भेटलैक जकर बुद्धि निर्मल नहि भेलैक आ बुद्धिओ निर्मल भेला उत्तर कोन फल भेटलैक यदि विद्या नहि संचित कऽ सकल ?

निर्मल बुद्धि विहीन मनुष्य न, थीक मनुष्याभास ।
बुद्धि अछैत न अरजय विद्या थिक बुद्धिक उपहास ॥

[२६]

स्वभावात् शस्त्रविद्यायाः शास्त्रविद्या कनीयस
शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते ॥

स्वभावतः शास्त्र विद्या शस्त्र विद्या सँ छोट होइत अछि, कारण जे शस्त्र द्वारा सुरक्षिते राष्ट्र मे शास्त्रक चिन्तन मनन संभव भऽ पबैत अछि ।

शस्त्र शास्त्र मे शस्त्रे विद्या श्रेष्ठ कहाबय ।
शस्त्र रक्षिते राष्ट्र शास्त्र चिन्तन कय पाबय ॥

[२७]

ब्राह्मणस्य कृता रक्षा, लक्षं लब्धं च काञ्चनम् ।
राज्ञा चाभ्यर्चितो बाहुः विद्यया किं न लभ्यते ॥

ब्राह्मणक रक्षा कयल, लाखो टाका कमयलहुँ तथा राजा द्वारा बाँहि पूजित भेल, वास्तवमे विद्यासँ लोक की की नहि लाभ कऽ लैत अछि ।

विप्रक रक्षा कयल, कमयलहुँ लाखक लाखो ।
विद्या की नहि दैछ? बढ़ल राजा लग साखो ॥

[२८]

शिक्षा-व्याकरण-ज्योतिश्छन्दः—कल्प निरुक्तिभिः ।
षडङ्गैः सहितान् वेदान् यो जानाति स वेदवित् ॥

शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, कल्प तथा निरुक्त एहि छबो अंग सहित वेद जे जनैत छथि सैह वेदक ज्ञाता थिकाह ।

ज्योतिष, छन्द कल्प, शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त ।
सहित वेद जे जानथि से वैदिक उपयुक्त ॥

[२९]

पापात् त्रस्यति यःस एव पुरुषः स्यादुत्तमोभूतले,
पापात्मा च बिभेति योऽपयशः स ज्ञायते मध्यमः
त्रासो यस्य न पातकादपि न वा लज्जापवादपि
प्रज्ञावद्भिरुदाहृतोऽयमधमः सर्वत्र निन्दास्पदम् ॥

जे व्यक्ति संसार मे पाप सँ डेराइत छथि से व्यक्ति उत्तम कहल गेल छथि, पाप करितो जे व्यक्ति अयश सँ डेराइत छथि से मध्यम कहल गेलाह अछि, परन्तु जकरा ने पापक डर छैक ने कलंकक लाज तकरा विद्वान लोकनि अधम कहलनि अछि, ओहन व्यक्ति सभ ठाम निन्दित होइत अछि।

डरय पाप सँ जे, से पुरुष कहाबय उत्तम,
करितहुँ पाप डरय अपयश सँ से थिक मध्यम।
जकरा नहि भय पापक, लाजक बा अपवादक
सबतरि निन्दा योग्य पुरुषकेँ बुझी नराधम॥

[३०]

एकेनांगीकृतो वोढुं दुःखभारो गुरुर्भवेत्।
तस्मादेनं लघूकर्त्तुं सुहृद्भ्यो विनिवेदयेत्॥

एके व्यक्ति यदि कोनो भार उठबैत अछि आ ओ दुःखक भार उघबामे भारी होइक तँ ओकरा हल्लुक करबाक हेतु मित्र लोकनि सँ निवेदन करबाक चाही।

अपन उठाओल भार होय उघबा मे भारी।
हल्लुक करबा हेतु मित्र केँ तुरत पुकारी॥

[३१]

यो न हृष्यति भारत्या शुद्धया श्रोत्र पेयया ।
स हृष्यति नरोऽनड्वान् घासग्रासेन केवलम् ॥

कानसँ पीबाक योग्य शुद्ध पवित्र वाणी सँ जे पुरुष प्रसन्न नहि होइत अछि ओ मनुष्यक आकारमे बड़द थिक जे केवल घास भेटला पर प्रसन्न भऽ सकैत अछि ।

जे नर सुनि सन्तुष्ट होइछ नहि सुमधुर भाषा ।
राखय से नर-बड़द मात्र घासक अभिलाषा ॥

[३२]

यः कोऽपि निज दौरात्म्यात् गुणवन्तं विनिन्दति ।
सा निन्दा निन्दकस्यैव गुणी निन्दास्पदं कुतः ॥

जे व्यक्ति अपन दुष्ट बुद्धिक कारणे गुणवान व्यक्तिक निन्दा करैत छैन्हि से निन्दा वस्तुतः ओहि निन्दा कयनिहारेक बुझबाक चाही, गुणवान व्यक्ति निन्दाक पात्र कोना भऽ सकैत छथि ?

अपन दुष्टतावश करइत अछि निन्दा जे गुणवानक ।
गुणी न निन्दित होथि, निन्दके थोक पात्र अपमानक ॥

[३३]

मृषा वदति लोकोऽयं ताम्बूलं मुखभूषणम् ।
मुखस्यभूषणं पुंसां स्यादेकैव सरस्वती ॥

पानकें जे लोक मुँहक शृंगार कहैत छथि से फूसि बजैत छथि। मुखक शृंगार तँ पुरुषक एक मात्र सरस्वती थिकथिन्ह।

कहय पान कें जे मुखभूषण से बजैत अछि फूसि।
सरस्वती शृंगार मुखक छथि क्यो न सकै' अछि दूसि॥

[३४]

बाल्ये न शिक्षिता विद्या यौवने नार्जितं यशः।
किं कृतं तेन जातेन जननी-क्लेशकारिणा॥

बाल्य अवस्था मे जे विद्याक शिक्षा नहि कऽ पौलक आ युवावस्था मे यशक अर्जन नहि कयलक, माताकें कष्ट देनिहार ओहन लोकक जन्म लेलासँ की लाभ ?

नेना मे सिखलक नहि विद्या
यश न कमायल होइत जवान।
माता कें दुखदायक बेटा जनमि
जन्म कें करय जियान॥

[३५]

पुत्रेऽपि लब्ध सम्माने नायशः खण्डितं पितुः।
निजैरेव गुणैर्लोके पुरुषो याति पूज्यताम्।

पुत्र जँ सम्मान लाभ कऽ लैत छैक ताहि सँ पिताक अयश

नहि मेटाइत छैक, कारण जे संसारमे लोक अपने गुणसँ पूजित होइत अछि।

पुत्र होथि सम्मानित तँ की पिता होथि अपयशसँ मुक्त।
अपनहि गुणसँ कयो समाजमे छथि पबैत आदर उपयुक्त॥

[३६]

वपुर्याति श्रियोयान्ति यान्ति सर्वेऽपि बान्धवाः।
कथासारे हि संसारे कीर्त्तिरेव स्थिरा भवेत्॥

शरीर चल जाइत छैक, सभ धन सम्पत्ति समाप्त भऽ जाइत छैक तथा सभ बन्धुबान्धव छूटि जाइत छथिन्ह। केवल कथा मात्र शेष रहि जाय वला एहि संसारमे कीर्तिए टा स्थिर रहि जाइत छैक।

संग न दैछ शरीर, सकल ऐश्वर्य बिलाइछ,
बन्धु बान्धवक प्रेम दीप धरि स्वतः मिझाइछ।
कयल क्रियाक कथा टा शेष रहय दुनिआमे
कीर्त्ति मात्र प्रणीक एतय सुस्थिर रहि जाइछ॥

[३७]

स एव पुरुषः श्रेष्ठः पूज्यो भवति तद्विदाम्।
धन-यौवन-विद्याभिः गर्वं नांगीकरोति यः॥

सेह पुरुष श्रेष्ठ थिकाह तथा समाज द्वारा आदर सम्मान

पबैत छथि जे धन, यौवन तथा विद्याक अहंकारकेँ स्वीकार नहि करैत छथि।

पुरुष श्रेष्ठ से विद्वजनसँ छथि पबैत सत्कार।
धन-यौवन-विद्याक गर्व जे करथि न अंगीकार ॥

[३८]

न धनं धनमित्याहुः धनमर्जनयोग्यता।
हीयते हि धनं पुंसां योग्यता न तु हीयते ॥

धन कोनो धन नहि थिक, असली धनथिक धन अर्जन करबाक योग्यता, किएक तँ धन क्रमहि घटि जाइत छैक, किन्तु योग्यता कहियो ने घटैत छैक।

धन नहि धन थिक, असली धन थिक अर्जन क्षमता।
दैछ योग्यता संग, मुदा धन ? योगो रमता ॥

[३९]

भोगेनापि न भोगभ्यः यस्येच्छा विनिवर्त्तते।
तस्य प्राणान्तिकोरोगः तृष्णा केन निवार्यते।

भोग कयलो उत्तार जकर भोग करबाक इच्छाक पूर्त्ति नहि भऽ पबैत छैक तकर प्राण धरि लेनिहार तृष्णा रूपी रोगकेँ के दूर कऽ सकैत छैक, अर्थात् क्यो नहि।

करितहुँ भोग, न भोगक इच्छा जकर पूर हो।
पुनि प्राणान्तिक रोग तकर कहु कोना दूर हो ॥

[४०]

काश्यां तनुपरित्यागात् साक्षात्कारेण चात्मनः ।
भक्त्या त्रैलोक्यनाथस्य मोक्षः सिद्ध्यति तद्विदाम् ॥

काशीमे शरीर त्याग कयला उत्तर अथवा आत्माक साक्षात्कार भेला पर अथवा तीनू लोकक स्वामी जे भगवान तनिका प्रति भक्ति भेला उत्तर प्राणीकेँ मोक्ष प्राप्त होइत छैक ।

काशी जाकय त्यागी देह,
त्रिभुवन पतिक चरणमे नेह ।
आत्मा जखन न रहय परोक्ष,
सिद्ध होइत अछि तखने मोक्ष ॥

[४१]

वीरः शौर्यविवेकाभ्यामुत्साहेन मण्डितः ।
मातापित्रोरलंकर्त्तुं कुले कुत्रापि जायते ॥

शूरता, विवेक तथा उत्साहसँ परिपूरित, माता-पिताक गौरवकेँ बढ़ौनिहार वीर पुत्र कदाचित कोनो कोनो कुलमे जन्म लैत छथि ।

शूर विवेकी ओ उत्साही
पुत्र कतहु लै छथि अवतार

माय बापकेर मुख उज्ज्वल कय
कीर्त्ति पसारथि भरि संसार ॥

[४२]

व्यवस्थातश्च्युतो यस्तु महाकुलसमुद्भवः ।
किं तेन रचितं लोके कृतघ्नेन दुरात्मना ॥

पैत्र वंशमे जन्म लेलो उत्तर एक बेर जे कयल व्यवस्थासँ पाछाँ हटैत अछि ओ कृतघ्न दुरात्मा संसारमे कोन वस्तुक रक्षा कऽ सकत ? अर्थात् कथुक नहि ।

पैत्र वंशमे जन्म ग्रहण कय रहय व्यवस्थासँ जे दूर ।
से कृतघ्न रक्षा न कथुक कय सकय होइत वैभवसँ पूर ॥

[४३]

अर्जितं भुज्यते यस्य यस्य चाकर्ण्यते यशः ।
पितुर्बहुसुतस्यापि तेन पुत्रेण पुत्रिता ॥

जकर कमायल खाइत अछि आ जकर यश अपना कानसँ सुनैत अछि, अनेक पुत्रक पिता होइतहु ओ व्यक्ति ओही पुत्रसँ पुत्रवान् बूझल जाइत अछि ।

जकर कमायल खाथि, सुयश सुनि हर्षें गाबथि ।
ताही सुतसँ पिता 'पिता' ई पदवी पाबथि ॥

[४४]

यशश्चिकीर्षया येन मृत्युरंगीकृतो रणे।
तस्यापरं भयस्थानं किं रिपोः प्रबलादपि ॥

यशक इच्छासँ जे युद्धभूमिमे मृत्युकेँ स्वीकार कऽ लेलक ओकरा हेतु प्रबल शत्रुक अछैतो डेरयबाक दोसर कोनो स्थान नहि रहैत छैक।

राखि यशक अभिलाषा रणमे मृत्यु करय स्वीकार।
रहितहु प्रबल शत्रु तकरा लै भयक न किछु आधार ॥

[४५]

एक एव च नीतिज्ञः कर्मकृत्वा सुखी भवेत्।
बहूनपेक्षमाणस्य स्थानात् प्रच्यवते मतिः ॥

एक मात्र नीतिज्ञक कथानुसार काज कऽ लेनिहार सुखी होइत अछि आ बहुत गोटेक विचारक अपेक्षा कयनिहारक बुद्धि ततमतमे पड़ि जाइत छैक।

सुख चाही तँ एक नीति पर चली निरन्तर।
दस भाँड़ा मुँह देब, बुद्धिमे आओत अन्तर ॥

[४६]

पापे नियोजयति भोजयतीह दुःखं
स्तेयं च कारयति शाठ्यमुपानयन्ती।

दीनं च वाचयति, याचयते च हीनं
किं नैव कारयति हन्त ! दरिद्रता नः ॥

पाप कर्ममे लगबैत अछि, दुःखक भोग करबैत अछि, चोरि करबैत अछि, छल प्रपंच सिखबैत अछि, दीन वचन बजबैत अछि आ तुच्छो लोकसँ याचना करबैत अछि। आह ! दरिद्रता हमरा सभसँ कोन कोन अपकर्म नहि करा लैत अछि।

लगबय पापकर्ममे सहजहिं दुःखक भोग करायब,
चोरि करावय, छल प्रपंचमे सेहो निपुण बनाबय।
दीनवचन बजवाबय, हीनहुसँ पुनिभीख मङाबय
हा दरिद्रता ! हमरा सभकेँ की नहि नाच नचावय ॥

[४७]

काणेन चक्षुषा जन्तुर्यथा किंचिन्न पश्यति।
न पश्यति तथा राजा चारेणानृतभाषिणा ॥

जेना कोनो जीव अपन कनाह आँखिसँ किछुओ नहि देखि पबैत अछि तहिना फूसि बजनिहार दूतकेँ रहला सन्ता राजा किछु नहि देखि पबैत छथि।

देखि सकय नहि जीवजन्तु जग रहने आँखि कनाह ॥
ओ राजा आन्हर होइत छथि जनिक दूत फुसियाह ॥

[४८]

वस्तु दोषमनादृत्य गुणान् चिन्वन्ति तद्विदः ।
अपि कण्टकिनः पुष्पे गन्धं जिघ्रति षट्पदः ॥

गुणजननिहार व्यक्ति कोनो वस्तुक दोषकेँ ध्यान मे नहि आनि केवल गुण मात्र केँ बीछि लैत छथि। जेना कि काँटवला गाछो सँ भ्रमर फूलक सुगन्ध मात्र ग्रहण कऽ लैत अछि।

वस्तुक दोष उपेखि, गुणीजन गुण केवल अपनाबय।
काँटवला गाछहुसँ भम्हरा केवल मधु पिबि आबय ॥

[४९]

अग्नौ परीक्ष्यते स्वर्णं काव्यं सदसि तद्विदि ।
किं कवेस्तेन काव्येन सद्भिः येनानुमन्यते ॥

सोनाक जाँच आगिमे दऽ कऽ कयल जाइत छैक आ काव्यक परीक्षा काव्य मर्मज्ञक सभामें भऽ पबैत अछि। सभामे उपस्थित काव्य रसिकक द्वारा जे प्रशंसित नहि भेल से कविता की आ ओ कवि की।

कविता जाँचल जाय सभामे, तपा आगिमे सोन ।
सभासदक मन हरय न, से की कविता वा कविकोन ?

[५०]

सलज्जः पुरुषः श्रेष्ठः कापथेऽपि व्रजन् क्वचित् ।
लज्जाहि जायते पुंसः नाकुलीनस्य मानसे ॥

कदाचित अबलाहो बाटपर चल गेनिहार सलज्ज लोक श्रेष्ठ होइत छथि, किन्तु जे छोट वंशमे जन्म लेने अछि ओकरा अपन अपकर्मक लाजो नहि होइत छैक।

चलितहु कुपथ कदाचित श्रेष्ठ कहाबथि पुरुष सलज्ज।
कय अकुलीन कुकर्मों, दाँत निपोड़य बनि निर्लज्ज॥

[५१]

कुत्रापि तिष्ठति मनः क्वचिदंगकानि
नात्मा चिकीर्षति रसैः श्रममभ्युपैति।
आलस्यमात्रवशगस्य नरस्य मन्ये
निद्रासुखं हरति जाठर एव वह्निः॥

मोन रहैत छैक कतहु आ देह कतहु रहैत छैक। अपनो परिचर्या करबाक हेतु आलसी परिश्रम नहि करऽ चाहैत अछि। बुझि पड़ैत अछि जे पेटक आगि अर्थात् भूखक ज्वाला जँ तेज नहि होइतैक तँ आलसी व्यक्ति सुतबाक सुखक परित्याग कित्रहु नहि करैत, सुतले सुतल जीवन बिता लैत।

मन रहैक कँकड़ीक खेत मे, माँझे आङनमे तन
छोह कटैत रहैछ काजकेर डरसँ सतत अलस जन।
आलस्यक वश रहय लगौने दृगपर निन्नक ताला
निद्रा सुखक हरण करइत छै' केवल पेटक ज्वाला॥

[५२]

जीवनार्थी कुलं त्यक्त्वा योऽतिदूरतरं व्रजेत् ।
लोकान्तरगतस्येव किं तस्य जीवितेन वा ॥

केवल जीविकाक हेतु जे दूरोसँ दूर चल जाइत अछि तकरा जीने की आ मुइने की ? अर्थात् मुइले जकाँ तकर जीबो व्यर्थ ।

जीवनार्थी कुलत्यागि, दूर जे जाइछ प्राणी ।
जिबितहु तकरा सद्यः मुइल समाने मानी ॥

[५३]

पराश्रयेण जीवन्ति कातराः शिशवः स्त्रियः ।
सिंहा सत्पुरुषाश्चैव निजदर्पोपजीविनः ॥

कायर, नेना आ स्त्रीगण अनका आश्रयमे रहैत अछि, मुदा सत्पुरुष आ सिंह अपना प्रभावसँ जीवन धारण करैत छथि ।

सिंह तथा सत्पुरुष अपन पुरुषार्थे जीवन धारथि ।
कायर, शिशु आ अबला परक भरोसेँ काल गुजारथि ॥

[५४]

स्वकृतानि च कर्माणि स्वयमेव विलुम्पति ।
तृष्णोपप्लुतचित्तानां स्थैर्यमात्मकृते कुतः ॥

तृष्णामे लेरटायल चित्त रखनिहार लोक अपने कयल करनीसँ अपन नाश करैत अछि, ओहन लोकक हृदयमे स्थिरता कहाँसँ आबि सकैत छैक ?

तृष्णामे ओफरायल लोकक हेतु कतय मन शान्त ।
अपन कर्म अपनहिसँ नाशथि भेल फिरथि उद्भ्रान्त ॥

[५५]

ज्ञातसारोऽपि शूरोपि पण्डितोऽपि क्रियोद्धुरः ।
निमज्जति महाराज ! बहूनां मतिकर्दमे ॥

बातक होर जनैत होथि, शूरहोथि आ पण्डित होथि, मुदा बहुत लोकक जूतिमे पड़ने ओहो पाँकमे फँसिते छथि ।

चतुर, शूर, पण्डित हो अथवा सकल तत्त्व केर ज्ञाता ।
बहुजूतो भऽ फँसथि पंकमे भेटनि नहि क्यो त्राता ॥

[५६]

जनयति हृदि खेदं, मङ्गलं न प्रसूते
परिहरति यशांसि म्लानिमाविष्करोति ।
उपकृतिरहितानां सर्वभोग-च्युतानां
कृपणकरगतानां सम्पदां दुर्विपाकः ॥

कंजूस लोकक पालाँमे पड़ल सम्पत्ति हृदयमे खेदक जन्म दैत अछि, कल्याण नहि होमऽ दैत अछि, यशक नाश करैत

अछि तथा मलिनता उत्पन्न करैत अछि। ओहि धनसँ ने ककरो उपकार होइत छैक ने क्यो भोगि पबैत अछि।

कृपणक हाथ गेल धनसँ हो नहि ककरो उपकार,
ने ओ अपने भोगय अथवा भोगि सकै' परिवार।
उपजाबय मन खेद, करय नहि जीवनमे कल्याण
नाशय यश ओ जमा कयनिहारक मुख करय मलान॥

[५७]

बुद्धिः तीक्ष्णतरा यस्य प्रतिभा मेधया सह।
पृथक् कुबुद्ध्यबुद्धाभ्यां सुबुद्धिरिह कथ्यते॥

जकर बुद्धि प्रतिभा आ मेधासँ परिपूर्ण ओ तेजगर होइक तथा कुबुद्धि ओ अबुद्धिसँ फराक होइक से सुबुद्धि कहबैत अछि।

जनिकर बुद्धि तेज पुनि प्रतिभा मेधा संग पबै' छथि।
पृथक कुबुद्धि अबुद्धि दुनूसँ से सुबुद्धि कहबै' छथि॥

[५८]

मेधा च प्रतिभा चैव यस्य बुद्धिर्गरीयसी।
स सुबुद्धिरिति ख्यातः सन्देहे निर्णयक्षमः॥

जकरा मे मेधा होइक, प्रतिभा होइक आ गम्भीर बुद्धि होइक से सुबुद्धि कहल गेल अछि। एहन लोक कोनो सन्देह भेला पर उचित निर्णय कऽ लेबामे सक्षम होइत अछि।

मेधा-प्रतिभा-युक्त जकर हो बुद्धि परम गम्भीर।
से सुबुद्धि, सन्देहक निर्णय करबामे जे धीर॥

[५६]

बुद्धिः स्फूर्त्तिमती यस्य भवेदूहसमन्विता ।

उत्पन्नेषु च कार्येषु स सप्रतिभ उच्यते ॥

बेर पड़ला उत्तर जकरा तुरन्त फुरैत होइक, काज उपस्थित भऽ गेला पर अपना ऊहिसँ सम्हारि लैत हो, तेहन लोक सप्रतिभ कहल जाइत अछि ।

फुरै' बेर पर जकरा, राखय ऊहि, सम्हारय काज ।

तेहनेकेँ सप्रतिभ सदासँ छैक कहैत समाज ॥

[६०]

लोककर्मणि यो दक्षोऽविद्ययाऽपि विना भवेत् ।

फले सविद्यसादृश्यात् लोकविद्यः स उच्यते ॥

बिनु विद्या पढ़नहुँ बिद्वाने लोक जकाँ लौकिक काजमे जे निपुण रहैत अछि से लोकविद्य कहल जाइत अछि ।

बिनु विद्या पढ़नहुँ होइछ जे लोक कर्ममे दक्ष ।

लोकविद्य से कहबय, पाबय आदर सभक समक्ष ॥

[६१]

दृष्टा वैरक्रिया यस्य परापर्यन्तपातिनी ।

तस्मिन् विश्वासमायान्तं मृत्युर्जिघ्रति मस्तके ॥

पतनक चरम सीमाधरि पहुँचा देबऽ वला शत्रुतापूर्

काज देखिओ कऽ ओहन व्यक्ति पर जे विश्वास करैत अछि,
तँ बूझक चाही जे मृत्यु ओकरा माथ पर मड़राइत छैक।

करय शत्रुता पूर्ण काज जे परम चरम सीमाधरि
कय तकरो विश्वास, जाय जे पुनः तकर खीमाधरि।
निश्चय जानक चाही सेजन मृत्युक पाश फँसल अछि
उज्ज्वल तकर भविष्य मलिन धूमिल भऽगर्त खसल अछि॥

[६२]

प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते।
उपाये सफले रक्षा निष्फले नाधिकं मृतेः॥

मृत्यु यदि समीपो आबि गेल हो तथापि रक्षाक उपाय करबाक चाही। सफलता भेटला पर रक्षा भऽ गेल, जँ विफलते भेटल तँ मृत्युसँ अधिक तँ किछुने भऽ सकैत अछि।

रहय मरण यदि निकट तदपि
रक्षाक उपायक करी विधान।
बचलहुँ तँ बड़ बेस, विफलतेँ
बाढ़ि मृत्युसँ नहि किछु आन॥

[६३]

व्याधिना पीड्यमानोऽपि भार्यमाणोऽपि भूभुजा।
प्रत्यायाति यमद्वारात् प्रतीकारपरो नरः॥

रोगसँ ग्रस्त कियक ने हो, राजासँ मारि कियेक ने खाइत हो, मुदा सतत रक्षाक उपायमे लागल लोक यमद्वारोसँ घुरि अबैत अछि।

व्याधि ग्रस्त, राजासँ दण्डित, जैतहुँ यमकेर द्वार।
घुरि चल अबइछ, करितहि रहइछ जे सदिखन प्रतिकार॥

[६४]

अङ्गीचकार किल वामनतां मुरारिः
रामोऽध्युवास वनमब्धिरुवाह बन्धम्।
दन्तावला अपि सृणि-व्यवसायरुद्धाः
किं नाचरन्त्यहह! कार्यवशात् पुमांसः॥

बेर पड़ला पर लोक की की ने करैत अछि। जेना विष्णु वामन भऽ अवतार लेलैन्हि, राम वनवासी बनलाह, समुद्र बान्हल गेलाह आ आँकुससँ हाथी पर्यन्त मनुष्यक वशमे भऽ जाइत अछि।

वामन बनला विष्णु, राम बनला वनवासी,
आँकुस लखि दन्तार करय नहि भयें उकासी।
सहलनि बन्धन सिन्धु जखन से अयलनि अवसर
पड़ने बेर नचैछ नाच ने कोन कोन नर॥

—:❀:—

शिशूनां सिद्ध्यर्थं नयपरिचितेर्नूतनधियां
मुदे पौरस्त्रीणां मनसिजकलाकौतुकजुषाम् ।
निदेशान्निःशङ्कं सपदि शिवसिंहस्यनृपतेः
कथानां प्रस्तावं विरचयति विद्यापति कविः ॥